हिन्दी कथा साहित्य

में

पञ्जाब का अनुदान

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

द्वारा

लिखित निबन्ध

जो

भाषा विभाग पञ्जाब

की

वार्षिक लेखक गोष्ठी १९५९-६०

में

पढ़ा गया

हिन्दी कथा-साहित्य में पञ्जाब का अनुदान

सभापति महोदय तथा सज्जनो,

हमारा देश भारत एक विशाल देश है, जिसकी १४ राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। इनमें से किसी भी भाषा के साहित्य का अध्ययन किसी राज्य-विशेष के दृष्टिकोण से करना हाथी के किसी एक अंग को देखने के समान है। मेरी यह निश्चि धारणा है कि भाषा या साहित्य को किसी सम्प्रदाय, धर्म या राज्य के साथ बांधने का प्रयत्न खतरनाक है। विशेषकर भारत की राजभाषा हिन्दी का अपना क्षेत्र भी इतना बड़ा है कि उसे किसी एक राज्य के साथ बाँधा ही नहीं जा सकता। इस कारण जब पंजाब सरकार के भाषा विभाग के डाइरैक्टर महोदय ने मुझ से पंजाब के उपन्यासकारों तथा कहानी लेखकों के सम्बन्ध में वार्त्ता देने को कहा, तो प्रारम्भ में मैं झिझका। पर अपने कुछ मित्रों के अनुरोध पर मैं इस विषय पर लिखने को तैयार हो गया। विशेषत: यह देखने के लिए भी कि मैं क्षेत्रीय विषय पर किस तरह लिख सकता हूं। मेरा जन्म पंजाब में हुआ। अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाग मैंने पंजाब ही में व्यतीत किया। पर मेरा दृष्टिकोण सदा से पूरी तरह भारतीय दृष्टिकोण रहा और प्रान्तीय अथवा साम्प्रदायिक धारणाओं से बच कर मैं सदा अपने को भारतीय ही मानता रहा हूं। मैं यह देखना चाहता हूं कि इस प्रादेशिक विषय पर मैं जितनी तटस्थता से कितनी वस्तुपरकता से लिख सकता हूं, विशेषत: ऐसे प्रदेश के सम्बन्ध में जहां मेरा जन्म हुआ है।

उक्त निश्चय कर लेने के बाद जब मैंने पंजाब में जन्म लेने वाले हिन्दी कथा-साहित्यकारों की सूची तैयार की तो जैसे मैं आश्चर्य-चकित रह गया। इस ओर मेरा पहले कभी ध्यान ही नहीं गया था कि पंजाब में हिंदी के इतने बड़े-बडे लेखकों और उपन्यासकारों का जन्म हुआ है। जब मैंने यह सूची अपने एक साहित्यकार मित्र

को दिखाई तो उन्होंने कहा कि वर्तमान हिन्दी कथा-साहित्यकारों की दृष्टि से इतनी शानदार सूची भारत के अन्य किसी भी राज्य के सम्बन्ध में नहीं बनाई जा सकती। सर्वश्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, यशपाल, अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, अश्क आदि श्रेष्ठ हिन्दी कहानी लेखकों और उपन्यासकारों को जन्म देने के लिए पंजाब सचमुच गौरव का अनुभव कर सकता है।

मैंने अभी आप से कहा था कि किसी भी भाषा के साहित्य का अध्ययन किसी राज्य विशेष के दृष्टिकोण से करने का प्रयत्न किसी बड़ी वस्तु के सीमित एक अंश को देखने के समान है। परन्तु किसी बड़ी वस्तु के सीमित अंश का सूक्ष्म विवेचन करने में भी कोई हर्ज नहीं है, यदि उसी विवेचन के आधार पर सम्पूर्ण वस्तु के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त स्थिर करने का प्रयत्न न किया जाए। यह ध्यान में रख कर मैं जब अपने विषय का प्रारम्भ करता हूं।

पंजाब में जन्म लेने वाले उपन्यासकारों और कहानी लेखकों के सम्बन्ध में कुछ भी कहने से पहले मैं साहित्य के इन दोनों माध्यमों के सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातों का जिक्र करूंगा, उसके बाद हिन्दी में उक्त माध्यमों की वर्तमान स्थिति पर बहुत संक्षेप में प्रकाश डालूंगा। तदनन्तर पंजाब में जन्म लेने वाले कहानीकारों और उपन्यास लेखकों के सम्बन्ध में, जो कुछ मुझे कहना है, कहूंगा। मेरा दृष्टिकोण समझने और उसकी विवेचना करने के लिए यह उपयोगी होगा।

हिन्दी में कहानी का विकास अपेक्षाकृत अधिक पुष्ट रूप में हुआ है, इसलिये पहले मैं कहानी का ही ज़िक्र करूँगा। 'कहानी' एक ओर अत्यन्त प्राचीन है तो दूसरी ओर अत्यन्त नवीन। जब से मानव ने भाषा द्वारा भाव-प्रकाशन करना आरम्भ किया, तभी से वह कहानी कहना भी सीख गया। साथ ही कहानी इतनी नवीन है कि नई कविता के समान उसके साथ 'नया' शब्द जोड़ना एकदम निरर्थक होगा। साहित्य के जिस अंग को आज 'कहानी' कहा जाता है, उसका विकास उन्नीसवीं सदी में हुआ है। यही कारण है कि जहां साहित्य के अन्य सभी अंगों--कविता, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, आलोचना, महाकाव्य आदि--का अपना-अपना इतिहास और अलग-अलग प्रथाएं हैं, वहाँ कहानी सच्चे अर्थों में विश्वजनीन है। जब तक वर्तमान कहानी का विकास हुआ, संसार सिकुड़ कर छोटा हो गया था। इस कारण संसार भर के देशों में कहानी नामक इस नए साहित्यिक माध्यम की टैक्नीक में न तो अधिक भेद है और न विकास-क्रम का अन्तर ही।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि कहानियों में विविधता नहीं हो सकती। कहानियों के बीसों प्रकार हैं और कहानी-लेखक को इस बात की स्वाधीनता प्राप्त है कि वह चाहे जिस ढंग से अपनी कहानी प्रस्तुत करे। बल्कि प्रतिभाशाली लेखक तो कहानी के किसी नए प्रकार का आविर्भाव भी कर सकता है। कहानी के लिए न समय की क़ैद है और न स्थान की। एक क्षण से लेकर महाकाल तक पर और एक अणु से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तक पर कहानी लिखी जा सकती है। फिर भी कहानी नामक यह नया साहित्यिक माध्यम कितने ही ऐसे सूक्ष्म बन्धनों से जकड़ा हुआ है कि अच्छी कहानी लिख सकना एक असाधारण कारीगरी (क्रैफ़्टमैनशिप) का काम बन गया है।

इस पर भी केवल कारीगरी के आधार पर कोई रचना अच्छी कहानी नहीं बन सकती। अगर लेखक के पास कहने को कुछ भी नहीं है, तो हज़ार कारीगरी दिखा कर भी वह अच्छी कहानी नहीं लिख सकता।

मेरी राय से 'घटनात्मक इकहरे कलापूर्ण चित्रण का नाम कहानी है।' उपन्यास में और कहानी में वही अन्तर है, जो एक विशाल वृक्ष में तथा एक इकहरी लता में होता है।

वर्तमान कहानी के निम्नलिखित तीन आधारभूत तत्त्व हैं :—

१—**केन्द्रीय भाव :** जो कहानी का प्राण है। यह आवश्यक है कि एक कहानी में केवल एक ही केन्द्रीय भाव रहे, एक से अधिक नहीं। इसी केन्द्रीय भाव को मूर्त्त रूप देने के लिए कहानी लिखी जाती है और सम्पूर्ण कहानी में इस तरह का एक भी वाक्य सहन नहीं किया जा सकता, जो उक्त केन्द्रीय भाव के स्पष्टीकरण या चित्रण में सहायक न हो।

२—**कथानक :** जो कहानी का शरीर है। कथानक के लिए स्थान, काल या पात्रों की कोई क़ैद नहीं है। पर यह आवश्यक है कि वह उक्त केन्द्रीय भाव की अभिव्यक्ति का निमित्त बने, उससे कुछ भी अधिक या कुछ भी कम नहीं। किसी तरह का अनावश्यक विस्तार कहानी को कमज़ोर बनाता है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि कथानक केन्द्रीय भाव के प्रकाशन का एक साधन या माध्मम है, वही लक्ष्य नहीं है। कथानक द्वारा कहानी के केन्द्रीय भाव को मूर्त्त रूप दिया जाता है।

३—**कलापूर्ण गठन :** जो कहानी का प्रसाधन है। आज के युग में प्रसाधन का महत्व जीवन के सभी क्षेत्रों में बहुत अधिक बढ़ गया है। इस प्रसाधन के बिना कहानी भी कच्ची या अनघड़-सी बनी रहती है।

अभी मैंने कहा था कि कहानी नामक यह साहित्यिक माध्यम एकदम नया माध्यम है, पर एक दृष्टि से इसे संसार का सबसे प्राचीन साहित्यिक माध्यम भी कह सकते हैं। सच बात तो यह कि जब से मनुष्य के मस्तिष्क ने कल्पना करना सीखा, तभी से वह कहानियां भी गढ़ने लगा। और यह भी एक सच्चाई है कि कल्पनाशक्ति ने ही मनुष्य को मनुष्य बनाया। संसार के प्राचीन साहित्य में कथा, गाथा किस्से आदि का अत्यधिक प्राधान्य है। भाव प्रकाशन के लिए, मनोरंजन के लिए शिक्षा के लिए तथा अलभ्य की कल्पना में प्राप्ति के लिए ये गाथाएं और कथाएं अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुईं। पर वर्तमान कहानी, जिसे अंग्रेज़ी में शार्ट स्टोरी कहते हैं, का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं सदी में हुआ। यह माना जाता है कि संसार के सर्वप्रथम श्रेष्ठ कहानी-लेखक फ्रांस के मोपासां थे। मोपासां ने सचमुच कहानी को वर्तमान रूप दिया। प्राचीन कथा और गाथाओं में 'क्लाइमैक्स' नामक तत्त्व नहीं था। मोपासाँ ने अपनी कहानियों में क्लाइमैक्स का आविष्कार किया और उसके द्वारा कहानी विश्व-साहित्य में एक नया माध्यन बन गया। एक ही कहानी में एक क्लाइमैक्स लेकर मोपासाँ ने सैंकड़ों अत्यन्त श्रेष्ठ कहानियां लिखीं। कहानी क्षेत्र का दूसरा महान आविष्कारक एंटन चेख़ब को गिना जाता है। मेरी राय से एंटन चेख़ब संसार का सर्वकालीन सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक हुआ है। भविण्य की बात तो मैं नहीं जानता, पर अब तक विश्व भर के सम्पूर्ण कहानी साहित्य में एंटन चेख़ब का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। एंटन चैख़ब ने कहानी के कलापूर्ण गठन को चरम सीमा तक पहुंचा दिया। यहाँ तक कि क्लाइमैक्स का महत्त्व भी उसने कम कर दिया। एंटन चैख़ब की कितनी ही कहानियों में कोई क्लाइमैक्स नहीं है, पर वे एक केन्द्रीय भाव को लेकर लिखी गई अत्यन्त श्रेष्ठ कहानियां हैं। कहानी कला के स्पष्टीकरण के उद्देश्य से इन बातों का ज़िक्र मैंने यहां कर दिया है।

जहाँ तक हिन्दी कहानी का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि हिन्दी में कहानी का विकास प्रथम महायुद्ध के आसपास हुआ। यद्यपि उन्नीसवीं सदी के अन्त में किशोरीलाल गोस्वामी आदि कुछ व्यक्तियों ने बंगला से प्रेरणा लेकर हिन्दी में कुछ कहानियाँ लिखी थीं। प्रथम महायुद्ध से पूर्व हिन्दी की कुछ अत्यन्त श्रेष्ठ प्रतिभाओं का ध्यान कहानी की ओर गया था। यह देख कर आश्चर्य होता है कि उस युग में श्री रामचन्द्र शुक्ल जैसे समालोचक, श्री जयशंकर प्रसाद और श्री मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने भी कहानी लिखने का प्रयास किया था। श्री वृन्दावनलाल वर्मा उसी युग से हिन्दी में कहानी लिख रहे हैं। पंजाब को यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसमें उत्पन्न एक लेखक की कहानी न सिर्फ़ हिन्दी की प्रथम श्रेष्ठ कहानी मानी जाती है, अपितु अभी तक उसका स्थान हिन्दी की अत्यन्त श्रेष्ठ कहानियों में है। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने अधिक

कहानियाँ नहीं लिखीं, पर उनकी 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी, जिसका कथानक अमृतसर से सम्बद्ध है, उन्हें हिन्दी कहानी साहित्य में अमर रखने के लिए पर्याप्त है। उसी युग में श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने भी कहानी लिखना प्रारम्भ किया था। उनका अधिकांश जीवन उत्तर प्रदेश में कटा, पर जन्म से वह पंजाबी थे, हिन्दी कहानी में वास्तविक विस्तार मुंशी प्रेमचन्द के आगमन से आया। उन्होंने अपनी पहली कहानी सम्भवत: १९०७ में लिखी थी। ५-६ वर्षों के बाद उन्होंने उर्दू की बजाय हिन्दी में कहानी लिखना प्रारम्भ किया। प्रेमचन्द जैसी असाधारण प्रतिभा का सहयोग पाकर हिन्दी कहानी की धारा अत्यन्त वेग से बह निकली। प्रथम महायुद्ध के द्वारा भारत पश्चिम के बहुत निकट सम्पर्क में आ गया। इससे जहां भारत के सामाजिक ढाँचे में बहुत से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, वहाँ यह भी कहा जा सकता है कि विदेशी साहित्य और विचारधारा का सीधा प्रभाव पहली बार भारत पर पड़ा। यह परिस्थिति कहानी के विकास के लिए अत्यन्त अनुकूल थी, क्योंकि जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कहानी उन्नीसवीं और बीसवीं सदी का माध्यम है और वर्तमान रूप में उसका विकास पश्चिम में ही हुआ है।

प्रथम महायुद्ध से लेकर १९३० तक के काल में हिन्दी कहानी जैसे एक सदी की मंज़िल पार कर गई। इस काल में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, शिवपूजन सहाय, राय कृष्णदास, पांडेय बेचन शर्मा उग्र और भगवतीप्रसाद वाजपेयी जैसे श्रेष्ठ कहानी लेखक हिन्दी को प्राप्त हुए।

मेरी राय से कहानी साहित्य की दृष्टि से उन्नीसवीं सदी का चौथा दशक, अर्थात् १९३० से लेकर १९३९ तक, अत्यन्त श्रेष्ठ काल है। यह कहा जा सकता है कि इस काल में हिन्दी कहानी विश्व कहानी के स्टैण्डर्ड तक पहुँच गई। ऊपर जिन लेखकों का मैंने ज़िक्र किया है, उनमें से अधिकांश लेखक तो इस युग में कहानियाँ लिख ही रहे थे, इनके अतिरिक्त सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, कमला चौधरी, विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क, सत्यवती मल्लिक, उषादेवी मित्रा जैसे श्रेष्ठ कहानी लेखक हिन्दी में नए-नए तत्त्वों का समावेश करने लगे।* जहां तक भारतीय भाषाओं का सम्बन्ध है, इस युग में हिन्दी कहानी, साहित्य की दृष्टि से, निस्सन्देह श्रेष्ठ दर्जे को पहुँच गई।

---

*लेखक ने भी इसी दशक में कहानी लिखना प्रारम्भ किया था।

यह एक आश्चर्य की बात है कि प्रथम महायुद्ध के साथ-साथ जिस हिन्दी कहानी में असाधारण जीवन और निखार आया था, वही हिन्दी कहानी दूसरे महायुद्ध से कुण्ठित होने लगी। १६३० से १६५० तक के काल में एक स्पष्ट और लम्बा गत्यवरोध हिन्दी कहानी में दिखाई देता है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि उस युग में कहानियां लिखी ही नहीं गईं (यद्यपि संख्या की दृष्टि से भी इस युग में अपेक्षाकृत कम कहानियाँ लिखी गईं), अपितु मेरी उक्त स्थापना का अभिप्राय यह है कि इस युग में हिन्दी कहानी का स्तर न सिर्फ ऊँचा नहीं हो पाया, बल्कि सब मिला कर हिन्दी कहानी का स्तर कुछ गिर ही गया।

वर्तमान दशक (१६५० से १६५६) में हिन्दी कहानी में फिर से गति दिखाई देने लगी है। कितने ही श्रेष्ठ नए कहानी लेखक इस दशक में हिन्दी को उपलब्ध हुए हैं: मोहन राकेश, अमृतराय, रामकुमार, भीष्म साहनी, कृष्ण बलदेव वैद, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, शेखर जोशी, ओम्प्रकाश श्रीवास्तव, सत्येन्द्र शरत, पुष्पा महाजन आदि। इन नए लेखकों से हिन्दी कहानी को निस्सन्देह नया बल मिला है। पर अभी तक मेरी राय से हिन्दी कहानी चौथी दशाब्दी के स्तर पर नहीं पहुंची है इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दी के अधिकांश पुराने कहानी लेखक बहुत समय से लगभग मौन हैं। यह कहना कठिन है कि इस मौन का कारण क्या है, उनके पास कुछ नया कहने को नहीं है, या कोई और कुण्ठा अथवा परिस्थितियाँ उन्हें मौन किए हुए हैं।

स्पष्ट है कि हिन्दी कहानी के उपर्युक्त विकास में पंजाब की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सर्वश्री सुदर्शन, यशपाल, वात्स्यायन, अश्क, विष्णु प्रभाकर, सत्यवती मल्लिक, बलराज साहनी, धर्मप्रकाश आनन्द, मोहन राकेश, कुलभूषण, पृथ्वीनाथ शर्मा, भीष्म साहनी, कृष्ण बलदेव वैद, रजनी पणिकर, सत्यप्रकाश संगर, पुष्पा महाजन, कंचनलता सब्बरवाल, मोहन चोपड़ा, वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता, जय नाथ नलिन, सोमेश चौधरी आदि हिन्दी के कहानी लेखक आज हिन्दी कहानी को समृद्ध करने का मूल्यवान प्रयास कर रहे हैं। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, यह सूची अत्यन्त गौरवपूर्ण है। इन सबका हिन्दी कहानी में जो स्थान है, उसकी चर्चा में आगे चल कर करूँगा, क्योंकि इस सम्बन्ध में मैं हिन्दी उपन्यास और हिन्दी कहानी को अलग लेकर नहीं चलूंगा।

अब मैं उपन्यास को लेता हूं। कहानी की परिभाषा करना आसान है, पर उपन्यास की परिभाषा उतनी आसान नहीं है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार 'नावल' की परिभाषा इस प्रकार है'।

Fictitions prose narrative of sufficient lenght to fill one or more volumes for playing character and actions representative of real life in continuous plot.

अर्थात् एक या अधिक जिल्दों में पूर्ण होने वाला काफ़ी लम्बा कल्पित वर्णनात्मक गद्य, जिसमें निरन्तर चलने वाले कथानक द्वारा वास्तविक जीवन के प्रतिनिधि पात्रों और क्रियाओं का चित्रण हो।

भारतीय साहित्य में उपन्यास को नया माध्यम नहीं कहा जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास की टेक्नीक में भी उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में बहुत अन्तर आ गया है। तथापि संस्कृत साहित्य के कादम्बरी, तथा हर्षचरितम् को निस्सन्देह उस युग के श्रेष्ठ उपन्यास भी कहा जा सकता है। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है कि उपन्यास जैसा शक्तिशाली माध्यम विद्यमान होते हुए भी प्राचीन युग में वह अधिक लोकप्रिय क्यों नहीं हो पाया। इसका एक कारण शायद उस युग की धारणाएँ तथा विभिन्न सामाजिक मूल्य हैं। कारण चाहे कुछ भी हो, उपन्यास का नए रूप में वास्तविक विकास भी उन्नीसवीं सदी में प्रारम्भ हुआ। उपन्यास के प्रति भारत में जो अवज्ञा भावना थी, उसका परिणाम यह हुआ कि शुरु-शुरु में कहानी लेखकों या उपन्यासकारों को साहित्य में कोई सम्मानित स्थान नहीं दिया गया। इसी सदी के प्रारम्भ में विशिष्ट साहित्यिक आलोचक कहानी और उपन्यास को अवज्ञा की दृष्टि से देखा करते थे। सम्भवत: यही कारण था कि प्रेमचन्द जैसी महान प्रतिभा को उनके जीवन काल में मंगलाप्रसाद पारितोषिक तक भी नहीं दिया गया था, हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनाना तो दूर की बात थी। मुझे स्मरण है कि जिस वर्ष 'रंगभूमि' जैसा श्रेष्ठ उपन्यास प्रकाशित हुआ था उस वर्ष का मंगलाप्रसाद पारितोषिक रंगभूमि को न देकर प्राचीन परम्परा पर लिखी गई एक कविता पुस्तक पर दिया गया था।

पश्चिम में उपन्यास, साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय तथा श्रेष्ठ माध्यम माना जाता है। इसका कारण स्पष्ट है। उपन्यास का क्षेत्र असीम है। उसके द्वारा लेखक अपने विचारों और अपनी कल्पना को ठीक अर्थों में मूर्त्त रूप दे सकता है। उपन्यासकार अपनी रचना में एक काल्पनिक जगत की सृष्टि करता है, पर यह काल्पनिक जगत पाठक के सन्मुख जैसे मूर्त्त रूप में आ खड़ा होता है। उपन्यास की इसी शक्ति ने उसे इतना लोकप्रिय और शक्तिशाली बनाया है। अमेरिका में दासत्व प्रथा नष्ट करने में 'अंकल टौम्स कैबिन' का जो महत्वपूर्ण स्थान है, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। फ्राँसीसी क्रान्ति के निर्माता वाल्टेयर, रूसो, आदि महान लेखक

थे और रूस में क्रान्ति का वातावरण बनाने में उस युग के साहित्यकारों--एंटन चेखव, तुर्गनेव, लियो टाल्सटाय, गोर्की आदि का अत्यन्त प्रमुख भाग है। एक अच्छा उपन्यास जैसे वास्तविक जीवन का सही-सही प्रतिबिम्ब पाठक के सम्मुख ले आता है। यह प्रतिबिम्ब केवल वाह्य घटनाओं का नहीं होता, अपितु मनुष्य के अन्तर्हित, यहाँ तक कि उपचेतना में छिपे हुए भावों का भी होता है। कितनी ही मानसिक तथा सामाजिक गुत्थियाँ जैसे पाठक के सम्मुख स्पष्ट हो जाती हैं। साहित्य का नोबल पुरस्कार सबसे अधिक उपन्यासों पर ही दिया गया है। यह भी उपन्यास की महत्ता का प्रमाण है।

जैसा कि मैंने अभी-अभी कहा, उपन्यास जीवन का प्रतिबिम्ब उपस्थित करता है। यह जीवन व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र या मानव मात्र का हो सकता है। केवल वास्तविकता का चित्रण ही उपन्यास का ध्येय नहीं है। उपन्यासकार को इस बात की पूरी छूट है कि वह अपनी किसी भी प्रकार की कल्पना को अपनी रचना में मूर्त्त रूप दे। वर्तमान और भविष्य की बात जाने दीजिए, इतिहास के क्षेत्र में भी उपन्यास अत्यन्त शक्तिशाली सिद्ध हुआ है। स्कन्दगुप्त और उसके युग के सम्बन्ध में इतिहास के बीसों ग्रन्थ पढ़ कर भी पाठक के सामने गुप्त काल का वह स्पष्ट चित्र नहीं आएगा, जो राखालदास बैनर्जी की 'करुणा' पढ़ कर आता है। इस दृष्टि से किसी ने ठीक ही कहा है कि 'कहानी या उपन्यास में नाम और तिथि को छोड़ कर बाकी सब सत्य है, जब कि इतिहास में नाम और तिथि को छोड़ कर बाकी सब असत्य है।'

उन्नीसवीं सदी में यांत्रिक सभ्यता के कारण मानव समाज में जो भारी आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति आ गई, उसके द्वारा साहित्य भी एक विशेष जमात की वस्तु न रह कर मानव मात्र की प्रेरणा का स्रोत बन गया। उपन्यास के विकास में इस उक्त परिस्थिति से स्पष्टत: मूल्यवान सहायता मिली। तब उपन्यास का ध्येय केवल मनोरंजन नहीं रहा अपितु मानव जीवन की गुत्थियों का विश्लेषण तथा नए विचारों का प्रदान भी उसका ध्येय बन गया।

उपन्यास का क्षेत्र असीम है किसी तरह की कैद उपन्यास के मार्ग में स्वीकार नहीं की जाती। अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक पर उपन्यास लिखा जा सकता है। इसी तरह सृष्टि के आदि काल से लेकर किसी भी आने वाले युग के सम्बन्ध में उपन्यासकार अपना सृजन कर सकता है। पात्रों अथवा काल के सम्बन्ध में भी कोई कैद उपन्यासकार के सम्मुख नहीं है। बीसवीं सदी में कितने ही उपन्यास ऐसे लिखे गए हैं, जिनका काल १ सदी से भी अधिक है। पात्रों की निरन्तरता तक भी इन उपन्यासों में नहीं है, यद्यपि कहानी की निरन्तरता अवश्य है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उपन्यास की

कोई टैक्नीक नहीं है। अच्छा उपन्यास लिखने के लिए महान प्रतिभा की आवश्यकता है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, अच्छा उपन्यास एक नई सृष्टि के समान है। मानव जीवन में कोई घटना असम्भव नहीं है। बड़े से बड़े बलिदान से लेकर अत्यन्त जघन्य बातें भी मानव जीवन में होती आई हैं। इससे उपन्यासकार किसी भी तरह का कथानक अपने लिए चुन सकता है, पर आवश्यकता इस बात की है कि वह अपने उपन्यास में वर्णित सब घटनाओं का औचित्य अपनी रचना ही में से सिद्ध करे। मेरी राय से अच्छे उपन्यास की यही एक बहुत बड़ी कसौटी है। जहां औचित्य सिद्धि के लिए वाह्य प्रयास करना पड़े, वहाँ उपन्यास कमज़ोर हो जाता है।

श्री हुमायूँ कबीर गतिशीलता और व्यापकता को उपन्यास का आवश्यक लक्षण मानते हैं। उनका यह भी कथन है कि कहानी जहां द्वि-आयामी है वहां उपन्यास त्रि-आयामी है। कहानी में एक परिस्थिति को लिया जाता है, उपन्यास एक तरह की विभिन्न परिस्थितियों का सिलसिला है। इन परिस्थितियों के साथ उपन्यास के पात्रों का चरित्र स्वभावतः बदला भी जा सकता है। आन्तरिक एकता को वह श्रेष्ठ उपन्यास की कसौटी मानते हैं।

संसार का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास किस रचना को गिना जाए, इस सम्बन्ध में काफ़ी मतभेद रहा है। विभिन्न कालों में और विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न उपन्यासों को सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता रहा है। पर यदि सब मिला कर देखा जाए, तो यह कहा जा सकता है कि समय और क्षेत्र की दृष्टि से लियो टालसटाय का 'वार एण्ड पीस' संसार का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना गया है। यद्यपि कितनी ही बातों में अन्य लेखकों की कितनी ही रचनाएँ इस उपन्यास से अधिक प्रभावशाली या श्रेष्ठ कही जा सकती है। पर उपन्यास में जितने गुणों की आवश्यकता है, उन सबको मिला कर उपर्युक्त स्थापना ठीक कही जा सकती है।

हिन्दी में उपन्यास का प्रारम्भ कहानी से पूर्व हुआ था। शुरु-शुरु में केवल, मनोरंजन की दृष्टि से हिन्दी में उपन्यास लिखे जाने शुरु हुए थे। 'चन्द्रकान्ता सन्तति', 'भूतनाथ' आदि उन्नीसवीं सदी के अन्त में लिखे गए अत्यन्त लोकप्रिय हिन्दी उपन्यास थे। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम स्थान देवकीनन्दन खत्री का था। पर प्रथम महायुद्ध के आसपास से हिन्दी में नए ढंग के सामाजिक उपन्यास लिखे जाने लगे। ये नए ढंग के हिन्दी उपन्यास सबसे पूर्व मुंशी प्रेमचन्द ने ही लिखे। उसी युग में बँगला से प्रेरणा लेकर कुछ अन्य सामाजिक उपन्यास भी हिन्दी में लिखे गए।

कहानी का ज़िक्र करते हुए मैंने कहा था कि हिन्दी कहानी विश्व स्तर पर १६३५ के आसपास पहुँच गई थी। पर उपन्यास के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती। हिन्दी उपन्यास अपेक्षाकृत कमज़ोर ही रहा। बल्कि मैं तो यहां तक कहूँगा कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध (१६५०) तक हिन्दी उपन्यास विश्व उपन्यास की तुलना में दूसरे दर्जे से ऊपर न उठ पाया। मुंशी प्रेमचन्द निस्सन्देह संसार के सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखकों में थे, पर उपन्यासकार के रूप में वह ऊंची द्वितीय श्रेणी से ऊपर नहीं पहुँच पाए। 'गोदान' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। मैं उसकी गणना विश्व साहित्य में करता हूं। पर सब मिला कर विश्व साहित्य की दृष्टि से गोदान भी ऊँची दूसरी श्रेणी से ऊपर नहीं जाने पाया। गोदान के अतिरिक्त रंगभूमि, त्यागपत्र, दादा कामरेड, शेखर, विराटा की पद्मिनी, सुखदा आदि कितने ही अत्यन्त श्रेष्ठ उपन्यास बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में लिखे गए, इन उपन्यासों को मैं बहुत पसन्द करता हूं और उपर्युक्त स्थापना करते हुए इन्हें भूला नहीं हूं।

यह एक अत्यन्त सन्तोष का विषय है कि हिन्दी उपन्यास का निरन्तर विकास हो रहा है। कहानी के सम्बन्ध में ज़िक्र करते हुए मैंने कहा था कि कहानी जैसे एक सदी की मंजिल बीस वर्षों में पार कर गई। यह स्थापना हिन्दी उपन्यास के बारे में नहीं की जा सकती। पर यह देख कर मुझे विशेष सन्तोष हुआ है कि हिन्दी उपन्यास का विकास निरन्तर हो रहा है और यह कहा जा सकता है कि स्वाधीनता के उपरान्त साहित्य के सब माध्यमों में से सबसे अधिक और श्रेष्ठ विकास हिन्दी उपन्यास में ही हुआ है।

दूसरे महायुद्ध से लेकर स्वाधीनता प्राप्ति के २-३ वर्षों तक हिन्दी उपन्यास में भी एक स्पष्ट गत्यवरोध दिखाई दिया था। इस गत्यवरोध के कारण भी मेरी राय में स्पष्ट थे। दूसरे महायुद्ध ने मानवीय मूल्यों में जो एकाएक भारी परिवर्तन उत्पन्न कर दिए थे, उसका प्रभाव संसार भर के साहित्य पर सामयिक गत्यवरोध के रूप में पड़ा था। युद्ध के बाद भारत में घटनाओं की रफ्तार और भी तीव्र हो गई। स्वाधीनता की प्राप्ति, देश का विभाजन, भारी मारकाट और राष्ट्रपिता गांधी की हत्या ये सब घटनाएँ २-३ वर्षों में ही हो गईं। इन सब घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि एक अल्पकालीन कुण्ठा जीवन के सब क्षेत्रों में व्याप्त हो गई। पर यह सन्तोष का विषय है उक्त कुण्ठा का प्रभाव बहुत देर तक नहीं रहा। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी उपन्यास में जो नई चमक आ गई है, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। इसी वर्तमान दशाब्दी में झूठा सच, मैला आंचल, बूंद और समुद्र, परती परिकथा, भूले बिसरे

चित्र, मृगनयनी, सागर और लहरें, नदी के द्वीप आदि अत्यन्त श्रेष्ठ उपन्यास लिखे गए हैं। अब यह कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास विश्व स्तर पर आ रहा है। यह हिन्दी के लिए अत्यन्त गौरव की बात है।

हिन्दी उपन्यास में भी पंजाब की देन कम महत्वपूर्ण नहीं है। सर्वश्री यशपाल, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, रजनी पनिकर, गुरुदत्त, कृष्ण बलदेव वैद, सत्यकाम विद्यालंकार, कंचनलता सब्बरवाल, पृथ्वीनाथ शर्मा, सत्यप्रकाश संगर, मोहन चोपड़ा, प्यारेलाल आदि उपन्यासकार विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

पंजाब में उत्पन्न हुए हिन्दी कहानी लेखकों तथा उपन्यासकारों के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देने से पूर्व मैं इस बात की चर्चा आवश्यक समझता हूं कि हिन्दी उपन्यास की वर्तमान उँचाइयों का अत्यन्त महत्वपूर्ण श्रेय श्री यशपाल को है। यशपाल का 'झूठा सच' नामक उपन्यास मेरी राय में हिन्दी का अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। 'झूठा सच' में हिन्दी उपन्यास निस्सन्देह नई उँचाइयों तक पहुंचा है। यह बात कम गौरवपूर्ण नहीं है।

पंजाब में उत्पन्न कहानी लेखकों और उपन्यासकारों का विवरण देते हुए मैं यह अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि इस स्थान पर उन साहित्यकारों का ज़िक्र सबसे पहले करूँ, जिन्होंने पंजाब में इस तरह का वातावरण बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लिया। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अतिरिक्त ये व्यक्ति हैं : श्री शिवव्रत लाल वर्मन तथा श्री दुर्गादास। श्री शिवव्रतलाल वर्मन अपने युग के एक लोकप्रिय उपन्यासकार थे र श्री दुर्गादास ऐसे कहानी लेखक थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन भारी संघर्षों में व्यतीत किया। हिन्दी के श्रेष्ठ कलाकार स्वर्गीय श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक का ज़िक्र मैं कर ही चुका हूँ।

अब मैं तिथि-क्रम से एक-एक करके पंजाब के वर्तमान कहानी लेखकों और उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय दूंगा।

गुरुदत्त

श्री गुरुदत्त का जन्म दिसम्बर १८९४ में हुआ था। विज्ञान में उन्होंने उच्च शिक्षा पाई, आयुर्वेद को अपना कार्य क्षेत्र बनाया और उसके बाद उपन्यास-रचना करने लगे। उन्होंने अपना प्रथम उपन्यास १९४२ में लिखा था। सम्भवतः अपने विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए ही उन्होंने उपन्यास को अपना माध्यम चुना। यह मानना पड़ेगा कि इस दिशा में उन्हें असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। श्री गुरुदत्त के विचारों से मेरा भारी मतभेद है। भारतीय संस्कृति के विकास, उसके आदर्श तथा उसके भविष्य के सम्बन्ध में गुरुदत्त की जो कल्पना है, मेरी राय से वह न केवल एकांगी है, अपितु हमारे देश और समाज के भविष्य के लिए हानिकारक भी है। उनके विचारों के सम्बन्ध में मेरी यह धारणा होते हुए भी मैं इस बात को स्वीकार करता हूं उपन्यास लेखक के रूप में उन्हें निस्सन्देह असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। उनके उपन्यास कला की दृष्टि से बहुत ऊंचे दर्जे के नहीं हैं। यदि वह संसार के उपन्यास साहित्य का अध्नयन करते और उपन्यास की टैक्नीक को समझने का प्रयत्न कर अपनी रचनाएँ निःशंक होकर लिखते, तो शायद वह हिन्दी के अत्यन्त मूर्धन्य उपन्यासकारों में स्थान पा सकते। पर जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, उनका ध्येय उपन्यास नहीं है, अपितु अपने विचारों और आदर्शों का प्रकाशन है। अपने कितने ही उपन्यासों की भूमिका में उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया है। सब मिला कर अब तक श्री गुरुदत्त ने परिमाण की दृष्टि से बहुत कुछ लिखा है। और जितना लिख चुके हैं, यह उन्हें हिन्दी उपन्यास साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान देने के लिए पर्याप्त है। क्योंकि उनके उपन्यासों में ऐसी पकड़ है जो पाठक को अपनी ओर खींच सकती है। यह शक्ति कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसी दृष्टि से श्री गुरुदत्त उपन्यासकार के रूप में एक महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

उनके उपन्यासों के एक सेट का मूल्य १५०) रु० के लगभग है।

उनके उपन्यासों के नाम ये हैं: विकृत-छाया, भावुकता का मूल्य, बहती रेता, विश्वासघात, विडम्बना, अन्तिम यात्रा, देश की हत्या, वाममार्ग, विलोम गति, गुण्ठन, मानव, आवरण, कला, दासता के नये रूप, पत्रलता, धरती और धन, मेरी पसन्द. छलना, एक और अनेक, दिग्विजय, सस्खलन, पुष्यमित्र, मायाजाल, उमड़ती घटाएँ, लुढ़कते पत्थर, सहस्रबाहु, नगर परिमोहन, विवेश, सफलता के चरण, भूल।

सुदर्शन

पं० सुदर्शन का जन्म सन् १८९६ में स्यालकोट में हुआ था। अपने चारों ओर के वातावरण से वह बचपन ही से असन्तुष्ट थे, इससे शिक्षा समाप्त करते ही उन्होंने समाज सुधारक के रूप में एक प्रचारक का कार्य प्रारम्भ किया था। लिखने का शौक उन्हें बचपन से ही था और वह अपनी विद्यार्थी अवस्था से ही उर्दू में कहानियाँ लिखा करते थे। बहुत शीघ्र सुदर्शन जी ने प्रचारक की नौकरी से भी त्यागपत्र दे दिया और वह लेखन और सम्पादन का कार्य करने लगे। इस युग में समाज सुधारक का कार्य कठिन था, इससे सुदर्शन जी को बहुत बड़ी-बड़ी असुविधाओं का सामना करना पड़ा। साहित्य कार्य में उन दिनों आजीविका सम्भव ही नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि सुदर्शन जी को कितनी ही बार सपरिवार फाके करने पड़े। कष्ट के इन दिनों में उनकी पत्नी ने अत्यन्त सराहनीय सहयोग दिया और सुदर्शन जी एक लेखक के रूप में चमक उठे। इन बातों का ज़िक्र मैं जान बूझकर कर रहा हूं। इस उद्देश्य से कि आज नए लेखकों को अब आर्थिक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है, तब उन्हें यह ध्यान रहना चाहिए कि वे अकेले नहीं हैं।

प्रथम महायुद्ध के आसपास पं० सुदर्शन ने हिन्दी में कहानी लिखना प्रारम्भ किया। 'पुष्प लता' नाम से जब उनका प्रथम कहानी संग्रह हिन्दी में प्रकाशित हुआ, तब उससे हिन्दी जगत में एक तहलका सा मच गया था। प्रेमचन्द को छोड़ कर उस पाए का लेखक तब हिन्दी जगत में दूसरा नहीं था।

कहानी लेखक के अतिरिक्त सुदर्शन जी एक अच्छे नाटकार भी हैं। पर उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने केवल एक छोटी-सी रचना ही लिखी है। कुछ लम्बी-लम्बी कहानियाँ उन्होंने अवश्य लिखी हैं, जिन्हें 'नावलेट' (लघु उपन्यास) कहा जा सकता है। सही-सही वातावरण उत्पन्न कर सकना सुदर्शन जी की कहानियों की विशेषता है। उनकी कहानी के कथानक की कल्पना पाठक को बरबस अपनी ओर खींच लेती है। और कहानी को ठीक ढंग से कहना भी उन्हें आता है। यही उनकी कहानियों की विशेषता है। कहानी क्षेत्र में प्रारम्भ में कुछ नए प्रयोग भी उन्होंने किए थे, पर एक उँचाई तक पहुंच कर वह जैसे सन्तुष्ट हो गए। उससे आगे बढ़ने का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया।

सुदर्शन जी साहित्य को सोद्देश्य मानते हैं। 'कला-कला के लिए' वाला सिद्धान्त

उन्हें आदर्श विहीन मालूम होता है। समाज की कलुषताओं का वर्णन करते हुए वह अपनी रचनाओं द्वारा पाठक को ऊँचे आदर्शो की ओर ले जाना चाहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अपनी रचनाओं द्वारा सुदर्शन जी को अपने ध्येय में यथेष्ट सफलता भी मिली है।

रचनाएं :

कहानी संग्रह :—चार कहानियाँ, तीर्थ यात्रा, सुदर्शन सुमन, पुष्पलता।

उपन्यास :—परिवर्तन।

पृथ्वीनाथ शर्मा

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा का जन्म नवम्बर १९०२ में हुआ था और उन्होंने १९२२ से लिखना प्रारम्भ किया। कथा साहित्य के प्रत्येक अंग में उन्हें रुचि है। कहानी, उपन्यास, नाटक और एकांकी उनके प्रिय माध्यम हैं। आजकल उनका सबसे प्रिय माध्यम उपन्यास है।

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा पंजाब सरकार के एक पदाधिकारी रहे हैं। एक व्यस्त सद्-गृहस्थ का जीवन व्यतीत करते हुए अपना अतिरिक्त समय उन्होंने साहित्य सेवा में बिताया है। साहित्य लेखन कभी उनके जीवन का मुख्य कार्य नहीं बनने पाया। किसी महान उपलब्धि के न रहते भी श्री पृथ्वीनाथ शर्मा द्वारा साहित्य निस्सन्देह स्थायी महत्व का है और पाठक चिर काल तक उसमें रस लाभ करते रहेंगे।

उनके अपने शब्दों में उनके साहित्य सृजन का उद्देश्य यह है—

'मैं अपनी रचनाओं में जीवन को प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न करता हूं और मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं से मुझे विशेष मोह है। इसलिए उस समाज की समस्याओं, उनमें भाग लेने वाले नारी-पुरुषों की इच्छा-आकांक्षाओं, प्रेम-घृणा, सुख-दुख एवं संकीर्णता-उच्छृङ्खलता को चित्रित करने में मुझे सुख मिलता है। मेरा उद्देश्य यह भी रहता है कि जिस जीवन से सामग्री लेकर मैं अपनी कृतियों को रचता हूं वे उस जीवन को सुखमय, श्रेष्ठतर तथा उच्चतर बनाने में सहायक हों और मानव के लिए केवल आनन्द का साधन ही न बनें बल्कि उसकी आत्मोन्नति में भी बल प्रदान कर सकें।

रचनाएं

कहानी संग्रह :—पंखड़ियाँ, उदय-अस्त, विवाह चक्र, मेरी गली।
उपन्यास :—युगसन्देश, विद्रूप, पूर्ण विराम।

यशपाल

हिन्दी के महान् कलाकार श्री यशपाल का ज़िक्र मैं ऊपर कर चुका हूं। उनका जन्म दिसम्बर १६०३ में फिरोज़पुर छावनी में हुआ था। १४-१५ वर्ष की आयु में गुरुकुल कांगड़ी में पढ़ते हुए एक हस्तलिखित पत्रिका में उन्होंने अपनी पहली कहानी लिखी थी। १६३५ में उन्होंने 'मक्रील' नामक प्रथम साहित्यिक कहानी लिखी, जो उसी वर्ष 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई थी। तब तक श्री यशपाल से मेरा ज़रा भी परिचय नहीं था। १६३६ के फरवरी मास में मुझे शान्तिनिकेतन में हिन्दी कहानी साहित्य पर एक यूनिवर्सिटी एक्सटैंशन लेक्चर देने के लिए निमन्त्रित किया गया था। अपने उस भाषण में हिन्दी के नए आने वाले कहानी लेखकों का ज़िक्र करते हुए मैंने लिखा था 'मक्रील' के लेखक श्री यशपाल का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल होना चाहिए। 'मेरी इस भविष्यवाणी की विपरीत आलोचना कई स्थानों पर हुई थी। पर मुझे इस बात की ख़ुशी है कि श्री यशपाल निस्सन्देह आज हिन्दी के अत्यन्त श्रेष्ठ कहानी लेखक और उपन्यासकार हैं।

श्री यशपाल बचपन से ही क्रान्तिकारी रहे हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन में उन्होंने क्रियात्मक भाग लिया और यह कहा जा सकता है कि वह इस समय तक भी क्रान्तिकारी ही हैं। क्रान्तिकारी मुख्यत: आदर्शवाद का उपासक बन जाता है। श्री यशपाल भी निस्सन्देह एक आदर्शवादी हैं। पर उनके चित्रण पूरी तौर से यथार्थवादी होते हैं। मेरी राय से यथार्थवाद और आदर्शवाद के इस है। चित्रण ने उनकी रचनाओं की उपादेयता और शक्ति को और अधिक बढ़ा दिया लिखने की प्रतिभा जन्मजात होती है, वह आरोपित नहीं की जा सकती। फिर भी यशपाल जी ने सतत साधना से इस क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है। १६३८ में जेल से छूटने के बाद से वह लेखक और प्रकाशक के रूप में कार्य करते रहे हैं। प्रकाशन का कार्य अत्यन्त बोझिल होता है। पर उनके सौभाग्य से उन्हें पत्नी के रूप में एक बहुत अच्छी प्रबन्धकर्तृ प्राप्त है। उनकी पत्नी श्रीमती प्रकाशवती प्रकाशन सम्बन्धी सब कार्य बहुत अच्छे ढग से कर रही हैं। अत: श्री यशपाल को लिखने का

काफ़ी अवसर मिल जाता है।

मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि यशपाल ने जो कुछ लिखा है, वह सब का सब अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि का है। कभी-कभी वह सस्ती चीजें भी लिख जाते हैं। सम्भवत: पाठकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए कभी-कभी वह अश्लीलता की सीमा तक भी पहुंचे हैं। बीच में एक बार ऐसा अवसर भी आया था जब उनकी इस प्रवृत्ति से मैं एक अंश तक खिन्न भी हो गया था, पर मुझे खुशी है कि वह स्थिति अब नहीं रही। पहले ५-६ वर्षों में श्री यशपाल ने जितनी कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं वे निस्सन्देह उनके यश को बढ़ाने वाले हैं।

मैंने ऊपर कहा था कि श्री यशपाल एक क्रान्तिकारी होने के कारण आदर्शवादी हैं, पर उनका आदर्शवाद सम्भवत: प्राचीन आदर्शवाद से भिन्न है। वह मार्क्सवादी हैं। और उनका ध्येय स्पष्टत: मार्क्सवाद का प्रचार रहता है। इस तरह कुछ पाठकों की राय से वह प्राचीन भारतीय आदर्शों की अवहेलना करते हैं। अपने एक नये कहानी संग्रह की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि मानव जाति के पिछले मूल्य आज एकदम बदल गए हैं। आज सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कोई भी बात समाज को स्वीकार्य नहीं होगी। न उनके स्वप्न में दिये गए बचन के कारण राज्य त्याग, न उनका अपनी पत्नी को बेचना और न पुत्र को बेचना। वे सब बातें आज नितान्त पागलपन के समान ज्ञात होंगी। आज के युग में मानव समाज के नए मूल्य हैं और श्री यशपाल इन मूल्यों की अभिव्यक्ति और स्थापना के लिए अपने साहित्य का सृजन करते हैं। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि उनके साहित्य सृजन का ध्येय क्या है? उन्होंने केवल इतना ही लिखा है:

'साहित्य सृजन की प्रवृत्ति का कारण मनुष्य होने के नाते समाज से लगाव है।'

'झूठा सच' मेरी राय से हिन्दी का अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। अभी तक उसका एक ही भाग प्रकाशित हुआ है। दूसरा भाग बहुत शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। 'झूठा सच' का वास्तविक मूल्यांकन तो तभी किया जा सकेगा जब दूसरा भाग प्रकाशित हो जाएगा, पर केवल पहला भाग भी हिन्दी उपन्यास साहित्य की मूर्धन्य रचना है।

आज से सिर्फ ११ साल पहले की उन अत्यन्त नृशंस और कटुतम घटनाओं पर, जिनकी प्रतिक्रिया आज भी बाकी है, इस तरह का उपन्यास पूरी तरह निस्संग रह कर

लिखा जा सकता है या नहीं, इस सम्बन्ध में दो रायें हो सकती हैं। पर यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि अपनी इस रचना में श्री यशपाल न सिर्फ पक्षपात से दूर रहे हैं, अपितु उनका ध्येय भी विषय-परक तथा वस्तुनिष्ठ (ऑब्जैक्टिव) रहा है व्यक्तिपरक (सब्जैक्टिव) नहीं।

'झूठा सच' में लेखक की एक बड़ी सफलता इस बात में है कि इस उपन्यास के प्राय: सभी पात्र, पुरुष और स्त्री, दोनों पूरी तरह सजीव पात्र बन पाए हैं। लाहौर की तत्कालीन असाधारण परिस्थितियों में लाहौर के, बल्कि सम्पूर्ण पंजाब के मध्यवर्गीय व्यक्तियों का जिस तरह का जीवन था, उसके सही-सही चित्रण के साथ विभिन्न श्रेणियों और विभिन्न आयुओं (एज ग्रुप) के प्रतिनिधि पात्रों का अत्यन्त सहज, स्वाभाविक और वास्तविकतापूर्ण चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। ऐसा सजीव और शानदार चित्रण आपको हिन्दी साहित्य में बहुत कम दिखाई देगा।

'झूठा सच' देश विभाजन और उसके परिणाम के चित्रण काफ़ी ईमानदारी से लिखी गई कहानी है। पर यह उपन्यास इसी कहानी तक सीमित नहीं है। देश विभाजन की सिहरन उत्पन्न करने वाली इस कहानी में स्नेह, मानसिक और शारीरिक आकर्षण, महत्वाकांक्षा, घृणा, प्रतिहिंसा आदि की अत्यन्त सहज प्रवाह से बढ़ने वाली मानवतापूर्ण कहानी भी 'झूठा सच' में वर्णित है।

रचनाएँ

कहानी संग्रह:—अभिशप्त, वो दुनियाँ, ज्ञानदान, पिंजड़े की उड़ान, तर्क का तूफान भस्मावृत्त चिनगारी, फूलों का कुर्ता, धर्मयुद्ध, उत्तराधिकारी, चित्र का शीर्षक, तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं ?, उत्तमी की माँ, ओ भैरवी।

उपन्यास:—झूठा सच (पहला भाग), मनुष्य के रूप, पक्का कदम, देशद्रोही, दिव्या, पार्टी कामरेड, दादा कामरेड, अमिता।

सत्यकाम विद्यालंकार

श्री सत्यकाम विद्यालंकार का जन्म अगस्त, १९०४ में हुआ था। अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ उन्होंने सन् १९२७ में पत्रकारिता से प्रारम्भ किया था। श्री सत्यकाम

विद्यालंकार एक सफल सम्पादक हैं। 'धर्मयुग' के सम्पादक के रूप में उन्हें असाधारण सफलता प्राप्त हुई है, पर मेरी राय से वास्तव में वह एक बहुत अच्छे हास्यरस लेखक हैं। 'अर्जुन' में वीणा की झंकारें शीर्षक से वह जो कालम लिखा करते थे, उसके कारण 'अर्जुन' एक अत्यन्त लोकप्रिय पत्र बन गया था। पर यह बात बहुत कम लोगों को मालूम थी कि इस कालम के लेखक सत्यकाम जी हैं। स्वाधीनता के उपरान्त सत्यकाम जी ने कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। 'देवता का दान' उनका कहानी संग्रह १६४८ में छपा। पिछले ३-४ वर्षों से वह एक सफल उपन्यास लेखक के रूप में हिन्दी जगत के सन्मुख आए हैं। उनके 'सीमा' नामक सामाजिक उपन्यास की अच्छी चर्चा हुई है। इस वर्ष भी 'मुक्ता' नाम से उनका एक उपन्यास प्रकाशित हुआ है। आजकल यह 'अंजलि' और 'धतूरे के फूल' नामक दो उपन्यास लिख रहे हैं। उपन्यास इन दिनों उनका सबसे प्रिय माध्यम है। साहित्य सृजन के ध्येय के सम्बन्ध में उनका कथन है :

'मेरा उद्देश्य मानव मन की विविध अनुभूतियों का चित्रण करना और मानव स्वभाव की गहराई तक पहुँचना है। मेरा विश्वास है, गहराई में हर इंसान ऊँचा होता है। कुछ लेखक गहराई के अंधेरे में बुराइयाँ टटोलते हैं, मैं गहराई में प्रकाश खोजता हूं। इस प्रयत्न में मुझे नई खोज का आनन्द मिलता है।'

सत्यवती मल्लिक

श्रीमती सत्यवती मल्लिक का जन्म सन् १६०५ में काश्मीर में हुआ था। उनका बचपन काश्मीर की सुरम्य घाटियों में व्यतीत हुआ। बचपन में वह कुछ न कुछ लिखती रहीं और बड़े होने पर उनकी रचनाएं सामयिक पत्रों में प्रकाशित भी होती रहीं, पर साहित्य सृजन का कार्य उन्होंने वास्तव में सन् १६३२ में प्रारम्भ किया। अपने लाहौर के निवास स्थान पर एक चाँदनी रात में गुलाब के खिले हुए दो बडे बड़े फूलों को देख कर उनके हृदय में जो भाव आए, वे भाव उन्होंने 'दो फूल' नामक अपनी कहानी में व्यक्त किए। यह कहानी निस्सन्देह बहुत सुन्दर है और इस कहानी को उनकी प्रथम साहित्यिक रचना कहा जा सकता है।

श्रीमती सत्यवती मल्लिक गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर से विशेषत: प्रभावित हुई हैं। उनकी रचनाओं से उन्होंने प्रेरणा प्राप्त की है। वह स्वयं एक बहुत अच्छी माता हैं, इससे अपने बच्चों के मनोविज्ञान को समझने का उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया है। बच्चों

के सम्बन्ध में उनका यह ज्ञान उनकी कहानियों में प्राय: झलकता है । 'भाई बहन' शीर्षक उनकी एक कहानी निस्सन्देह अत्यन्त श्रेष्ठ कहानी है । इसमें दो छोटे बच्चों के मनोविज्ञान का बहुत मार्मिक चित्रण है ।

उनका कथन है : 'साहित्य सृजन में किसी उद्देश्य को लेकर मैंने कभी कलम नहीं उठाई । यद्यपि जीवन के शनै: शनै: बदलने अथवा आसपास की परिस्थितियों के फलस्वरूप जो आकार मेरे मन में बने, उनमें भले ही पाठक को कोई उद्देश्य दिखाई दे जाए ।'

श्रीमती सत्यवती मल्लिक के दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं ।

राजेन्द्रलाल हांडा

श्री राजेन्द्रलाल हांडा का जन्म सन् १९०६ में हुआ था । वह आजीवन एक श्रेष्ठ पत्रकार रहे हैं । 'ट्रिब्यून' के सम्पादकीय विभाग में काम करने के बाद वह भारत सरकार के सूचना अधिकारी रहे और आजकल राष्ट्रपति के प्रेस अटैची हैं । श्री सत्यकाम विद्यालंकार की तरह वह भी हास्य रस के अत्यन्त श्रेष्ठ लेखक हैं । हास्य रस पूर्ण उनकी कितनी ही रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुकी हैं । 'दिल्ली में दस वर्ष' 'मैं और मेरी मोटर', 'मकान की खोज' आदि रचनाएँ पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं । 'शकुन्तला' नाम से एक सामाजिक उपन्यास भी हांडा जी ने लिखा है । आज-हांडा जी ग्राम जीवन के सम्बन्ध में एक उपन्यास लिख रहे हैं ।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

जन्म: दिसम्बर १९०६ । १९२८ से कहानी लिखना प्रारम्भ किया । प्रथम कहानी संग्रह १९३० में बम्बई के हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर द्वारा प्रकाशित हुआ ।

कहानी और नाटक मेरे भाव प्रकाशन के प्रिय माध्यम हैं ।

साहित्य के सम्बन्ध में इस प्राचीन भारतीय धारणा से मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि 'जहाँ शब्द और अर्थ का पूर्ण समन्वय है और जहाँ कहने की कोई बात छोड़ नहीं दी गई तथा कोई बेकार की बात नहीं कही गई (अन्यूनं नातिरिक्तम्) वह साहित्य

है।' प्राचीन भारतीय धारणा के अनुसार साहित्य का लक्षण भी रस है और साहित्य का ध्येय भी रस ही है। 'रस' की यह महत्ता स्वीकार करते हुए भी मैं भाव प्रकाशन को साहित्य का ध्येय मानता हूं। यह स्पष्ट है कि इस ध्येय के लिये जहाँ लेखक का अपने प्रतिपाद्य विषय पर प्रभुत्व आवश्यक है. वहाँ यह भी आवश्यक है कि वह अपनी रचना में अपने को पूरी तरह निस्संग रख सके, तभी उसकी रचना श्रेष्ठ साहित्य में स्थान पा सकेगी।

रचनाएं :

कहानी संग्रह:—चन्द्रकला, भय का राज्य, अमावस, तीन दिन, वापसी। खन्ने का कुआँ।

आजकल:—'बरफ का तूफान' नामक एक लघु उपन्यास लिखने का इरादा कर रहा हूँ।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय

श्री स० ही० वात्स्यायन का जन्म सन् १९०८ में गुरदासपुर में हुआ था। श्री यशपाल की तरह वह भी एक क्रान्तिकारी हैं। पर उनके जीवन में कितने ही बड़े-बड़े परिवर्तन आए हैं। विद्यार्थी जीवन समाप्त करते न करते वात्स्यायन जी क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गए थे और दूसरे दिल्ली काँग्रेसी केस में वह गिरफ्तार हो गए थे। जेल में वह कई दिन तक फाँसी की कोठरियों में भी रहे। जेल में रहते हुए उन्होंने कितनी ही कहानियां लिखीं जो किसी तरह बाहर पहुँच गईं। १९३२ में उनके अपने हाथ से जेल में लिखा एक कहानी संग्रह उनके बड़े भाई ने मुझे दिया था। इसी संग्रह की कुछ कहानियां जैनेन्द्र जी ने 'विशाल भारत' में प्रकाशनार्थ भेजीं। 'विशाल भारत' उन दिनों हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ पत्र माना जाता था। कहानियों के साथ लेखक के रूप में वात्स्यायन जी का नाम देना सम्भव नहीं था, इससे 'अज्ञेय' के नाम से वे कहानियां छापी गईं। वात्स्यायन अत्यन्त श्रेष्ठ कहानियां लिख सकते हैं। कुछ ही समय के बाद जेल से मुक्त होकर वात्स्यायन जी कार्य क्षेत्र में आ गए और जब से यह अज्ञेय नाम से प्रसिद्ध हैं।

वात्स्यायन जी की रचनाएँ मुख्यतः अन्तर्मुखी हैं। अपनी अधिकांश रचनाओं में

उन्होंने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों का चित्रण किया है। यहाँ तक कि उनके उपन्यास भी प्रधानतः आत्म-चरितात्मक हैं। यह तथ्य उनकी रचनाओं में एक विशेष प्रकार की वास्तविकतापूर्ण गहरी अनुभूति भर देता है। इस तथ्य का एक कमज़ोर पहलू भी है। आत्म-चरितात्मक रचनाओं में लेखक अहं का मोह नहीं छोड़ पाता, इसमे वह अपने साथ तो न केवल पूरा न्याय करता है, अपितु बहुत बार अनजाने में अपने को विशिष्ट सिद्ध करने का प्रयत्न भी करता है। परन्तु दूसरे पात्रों को, जो वास्तविक व्यक्तियों के प्रतिनिधि होते हैं, लेखक की पूरी सहानुभूति प्राप्त नहीं हो पाती। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह कमज़ोरी रहते हुए भी इसका बलवान पक्ष भी है। एक शक्तिशाली लेखक स्वानुभूति का वर्णन बहुत ही प्रभावशाली रूप में करेगा। यह शक्ति वात्स्यायन जी की सभी रचनाओं में है। द्रष्टा की पैनी दृष्टि उनमें हैं। जीवन की गहराई तक वह पहुँचते हैं और उसका अत्यन्त सजीव और अर्थपूर्ण चित्रण करते हैं। 'शेखर' की इसी शक्ति ने उसे अत्यन्त प्राणवान उपन्यास बना दिया है। यही बात 'नदी के द्वीप' के सम्बन्ध में है। ऊपर मैंने जिन कमजोरियों और शक्तियों का ज़िक्र किया है, वे सब शक्तियाँ और कमज़ोरियाँ उक्त दोनों उपन्यासों में हैं। सब मिला कर वात्स्यायन जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों तथा कहानीकारों में हैं।

वात्स्यायन जी के उपन्यास मुख्यतः व्यक्तिप्रधान उपन्यास हैं और उन्हें अन्तर्मुखी कहा जा सकता है। एक या कुछ व्यक्तियों की कुण्ठाओं और उनकी मानसिक समस्याओं का चित्रण इन उपन्यासों में हैं। यह चित्रण निस्सन्देह बहुत श्रेष्ठ कोटि का है। पर एक खास तरह की घुटन इन सब रचनाओं में व्याप्त है। यह पहलू भी वात्स्यायन जी की एक शक्ति गिना जा सकता है और साथ ही साथ एक कमज़ोरी भी। वात्स्यायन जी कहीं समाज का, मानव समूह का या उनकी अनुभूतियों का उन्मुक्त चित्रण नहीं कर पाते। जैसे यह उनका क्षेत्र ही नहीं है।

रचनाएं :

कहानी संग्रह :—परम्परा, विपथगा, शरणार्थी।

उपन्यास :—शेखर (तीन भाग), नदी के द्वीप।

उपेन्द्रनाथ अश्क

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का जन्म सन् १६१२ में हुआ था। उनकी पहली रचना १६२६ में छपी थी, जब वह केवल १६ वर्ष की आयु के थे। प्रारम्भ में वह उर्दू में लिखते थे, पर १६३५ से उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। श्री उपेन्द्रनाथ अश्क एक अच्छे कहानी लेखक हैं। कहानी लिखने में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई। इसके बाद वह नाटककार हैं। उन्होंने बहुत से नाटक लिखे हैं और रंगमंच का भी उन्हें खासा अच्छा अनुभव है। रंगमंच से इतना परिचय बहुत कम हिन्दी नाटककारों को है, जितना श्री अश्क को है। पिछले १५ वर्षों में अश्क जी ने बहुत से उपन्यास भी लिखे हैं। उनका पहला उपन्यास पढ़ कर मुझे बड़ी निराशा हुई थी। पर क्रमश: वह अच्छे उपन्यास भी लिखने लगे। उनकी 'बड़ी-बड़ी आँखें' निस्सन्देह एक सफल और श्रेष्ठ उपन्यास है। श्री वात्स्यायन की तरह अश्क जी की बहुत सी रचनाएँ भी आत्मानुभूति पर आधारित हैं। गिरती दीवारें, गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखें, पत्थर-अलपत्थर, ये सब तथा अश्क जी की कितनी ही कहानियाँ और कितने ही नाटक इसी श्रेणी में आते हैं। पर अश्क जी अपनी रचनाओं में अधिक अन्तर्मुखी नहीं हो पाते। वह वातावरण के चित्रण तथा घटनाओं की विविधता पर अधिक बल देते हैं। 'बड़ी-बड़ी आँखें' को छोड़ कर अपने अन्य उपन्यासों में वह बहुत गहराई पर नहीं उतरे हैं। इससे उनकी रचनाओं की मनोरंजकता निस्सन्देह बढ़ गई है।

अश्क जी एक अत्यन्त श्रमशील लेखक हैं। अपनी मेहनत से वह उस दर्जे पर पहुंचे हैं, जिस पर वह आज विद्यमान हैं। जीवन का उन्हें खासा अच्छा अनुभव है, क्योंकि किसी तरह के बन्धनों की उन्होंने प्राय: परवाह न की। साधनों की अल्पता के कारण जो कुण्ठायें उनके सामने आईं, उनकी पूर्ति उन्होंने बदलते हुए सामाजिक जीवन का आधार लेकर प्राचीन धारणाओं की पूर्ण उपेक्षा द्वारा प्राप्त की। इस तरह उनकी अनुभूतियों में विविधता और गहराई दोनों का समावेश हो गया। यह सब उनकी रचनाओं में भली प्रकार प्रतिबिम्बित होता है। सब मिला कर श्री अश्क हिन्दी कहानी साहित्य तथा हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपने लिए स्थायी स्थान बना चुके हैं।

रचनाएं :

कहानी संग्रह :—७० श्रेष्ठ कहानियाँ, छींटे, जुदाई की शाम का गीत, काले साहब, बैंगन का पौधा, पिंजरा, दो धारा।

उपन्यास :—गिरती दीवारें, गर्म राख, सितारों के खेल, बड़ी-बड़ी आँखें, पत्थर-अलपत्थर।

विष्णु प्रभाकर

श्री विष्णु प्रभाकर का जन्म सन् १९२१ में हुआ था। बचपन ही से वह हिसार में रहे, वहीं उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। उनका साहित्यिक जीवन सन् १९३४ से प्रारम्भ हुआ और उनकी पहली कहानी 'अलंकार' में प्रकाशित हुई। श्री विष्णु प्रभाकर अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि के कहानी लेखक हैं। मेरा ख्याल है कि वह श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय से विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं। उनकी रचनाओं पर शरतचन्द्र की छाप स्पष्ट रूप से विद्यमान है। मेरे इस कथन का अभिप्राय यह नहीं है कि श्री विष्णु प्रभाकर की रचनाएँ मौलिक नहीं है। उनकी रचनाएँ पूरी तरह मौलिक है। पर शैली की दृष्टि से उन्हें में उसी श्रेणी में रखना पसन्द करूँगा, जिस श्रेणी में शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय की रचनाएँ हैं। दोनों की उँचाइयों में चाहे कितना ही अन्तर क्यों न हो। श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय को मैं भारत का सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार मानता हूं। श्री विष्णु प्रभाकर की रचनाओं मैं को उसी ढंग का मान कर में उन्हें स्पष्टत: विशेष सम्मान दे रहा हूं। इस सम्मान के वह पूरे अधिकारी हैं। एक विशेष प्रकार का सहजपन विष्णु प्रभाकर की कहानियों में है। उनके उपन्यासों में भी यही गुण है। मनोविज्ञान या सामाजिक जटिलताओं के विश्लेषण का शास्त्रीय या परम्परागत प्रयत्न वे नहीं करते। किसी तरह के आर्थिक या सामाजिक ढाँचे के पक्ष या विपक्ष में भी वह अपनी रचनाओं में कहीं कुछ नहीं कहते, पर एक सहज, सुबोध और स्वाभाविक प्रवाह उन की रचनाओं में आकर्षण उत्पन्न कर देता है और वह पाठक के मन को छूता है।

मेरे उस प्रश्न पर—कि आप के साहित्य-सृजन का उद्देश्य क्या है? उन्होंने इतना ही कहा :

'मानव की खोज ही मेरा लक्ष्य है और मानव में 'मैं' भी हूं।

रचनाएँ :

कहानी संग्रह :—आदि और अन्त, रहमान का बेटा, जिन्दगी के थपेड़े, संघर्ष के बाद, जीवन-पराग, पंचतंत्र (रूपान्तर), धरती अब भी घूम रही है, मूड।

उपन्यास—निशिकान्त, तट के बन्धन, स्वप्नमयी ।

जयनाथ नलिन

श्री जयनाथ नलिन का जन्म १६१२ में हुआ था । सन् १६३४ से उन्होंने विभिन्न पत्रों में कहानियां लेख आदि लिखने प्रारम्भ किए । उन्होंने कुछ स्कैच और नाटक आदि भी लिखे हैं । वह निबन्धकार और आलोचक भी हैं । व्यंग्य उनका सबसे प्रिय माध्यम है । उनकी रचनाओं में व्यंग्य की प्रधानता रहती है । साहित्य सृजन के ध्येय के सम्बन्ध से उनका कथन है :

"कला को मैं इसी धरती पर उगने वाले इन्सान के लिए मानता हूं-दृश्य और अदृश्य समस्त विराट को मैं कृष्ण-मानव में समाया पाता हूं । समस्त को मैं मानव के लिए मानता हूं । कला समस्त के बाहर की वस्तु नहीं । तब वह भी मानव के लिए है ।" तथा—

नलिन की कला का उद्देश्य है—मानव । उसकी कला का सहचर है मानव और उसकी यात्रा का छोर भी है मानव । हाड़-मांस से परे भी कुछ है, ऐसी आस्था नलिन की नहीं ।

रचनाएँ :

कहानी संग्रह :—जवानी का नशा, झुरमुट, टीलों की चमक ।

बलराज साहनी

श्री बलराज साहनी का जन्म रावलपिंडी में १६१३ में हुआ था । लिखने का शौक उन्हें उन्हीं दिनों से था जब वह गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर के विद्यार्थी थे । आज वह देश के सर्वश्रेष्ठ अभिनेताओं में से हैं । चित्रपट पर ही नहीं बल्कि रंगमंच पर भी उनका अभिनय अत्यन्त मार्के का होता है । अभिनय कला और नाटक के सम्बन्ध में उनका अध्ययन विशेष रूप से अंकनीय है । पर मेरी राय से कला के क्षेत्र में उनका सर्वश्रेष्ठ रूप कहानी लेखक के रूप में प्रकट होता है । श्री बलराज साहनी ने

बहुत कम कहानियाँ लिखी हैं, वे सब हिन्दी में लिखी हैं। उनकी कहानियों का संग्रह 'वसन्त क्या कहेगा?' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की एक कहानी 'वापसी' मेरी राय से हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जानी चाहिए। मुझे आशा है कि चित्रपट से अवकाश ग्रहण करते ही वह साहित्य सृजन को अपना ध्येय बनाएँगे। पिछले दिनों पंजाबी में भी उन्होंने कुछ अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। वह हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी तीनों में समान अधिकार से लिख सकते हैं। साहित्य सृजन में उनका ध्येय समाजवाद का प्रचार रहा है।

धर्मप्रकाश आनन्द

श्री धर्मप्रकाश आनन्द का जन्म सन् १९१४ में हुआ था। लेखन कार्य का प्रारम्भ उन्होंने सन् १९३८ में किया जब वह जीवन क्षेत्र में प्रवेश कर चुके थे। उनका माध्यम एकांकी तथा कहानी हैं। श्री बलराज साहनी की तरह श्री धर्मप्रकाश आनन्द भी एक अत्यन्त कार्यव्यग्र व्यक्ति हैं। भारतीय फाइनैंस सर्विस से सदस्य के नाते वह आजकल सेण्ट्रल बोर्ड आफ रेवेन्यू के सदस्य हैं और उन्हें किसी अन्य कार्य के लिए कोई अवकाश नहीं मिल पाता। पर इस बीच उन्होंने जो कहानियाँ लिखी हैं, वे निस्सन्देह अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। सूक्ष्म विवेचन तथा गहरी दृष्टि ये दोनों उनकी रचनाओं में हैं। 'कच्चे धागे' नाम से उनका एक कहानी संग्रह गत वर्ष प्रकाशित हुआ था। उनकी कहानियाँ स्थायी महत्व की है।

साहित्य सृजन के बारे में उनका मन्तव्य इस प्रकार है :

'मेरे लिए लिखना न तो आजीविका का साधन है न समाज सुधार का माध्यम। मैं तो इसलिए लिखता हूं कि लिखे बगैर अपने आपको अधूरा, असन्तुष्ट पाता हूं। पर लेखक का कहानी लिखना और पाठकों को उस कहानी का पसन्द आना दो भिन्न बातें हैं। अपने व्यक्त करने की भावना केवल लेखक की ही कमज़ोरी नहीं। हर कोई अपने अन्दर किसी क्षेत्र-विशेष में अपनी अभिव्यक्ति की सम्भावना लिए फिरता है। अपने को व्यक्त करने का प्रयत्न अपने को सम्पूर्ण बनाने का प्रयत्न है। प्राय: यह प्रयत्न सफल नहीं हो पाता। केवल सफल होने की हसरत रह जाती है। जीवन—अधूरा इसीलिए तो लगता है कि इसमें सम्भावनाओं के खण्डर हैं और हसरतों के अंबार।

'लेखक के लिये लिखना अनिवार्य तो है, लेकिन लिखना बड़बड़ाना तो नहीं जिस पर कोई काबू न हो, जिसका कोई मतलब न हो। लेखक को अपने सामने कोई मंज़िल रख कर और उस मंज़िल के लिए अपनी गति को कोई दिशा देकर ही चलना पड़ता है। लेखक अपने लिखने की कथावस्तु अपनी वृत्ति के अनुसार ढूंढता है। मुझे मेरी सामग्री मेरे रोज़मर्रा के जीवन से मिलती है। इस रोज़मर्रा के जीवन में कई बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें दूसरों के सामने दोहराने को जी चाहता है। कम से कम उनके कुछ पहलुओं को। मेरी कहानियां ऐसे ही कुछ पहलुओं की झांकी हैं। जो बात घटी है, लेखक उसे दोहराते समय उस घटना के वही पहलू उजागर करता है, जो उसे महत्वपूर्ण लगे हैं। हो सकता है किसी और देखने वाले को उस घटना में वह पहलू नज़र आएँ ही नहीं। घटना का अपना सत्य-असत्य कुछ नहीं है। घटना कहानी भी नहीं है। घटना या कथा-वस्तु तो चित्रकार के मॉडल की तरह हैं। लेखक कथावस्तु से कहानी का निर्माण उसी तरह करता है, जैसे चित्रकार मॉडल से चित्र का। सामने एक ही मॉडल होते हुए भी चित्रकार एक जैसा ही चित्र नहीं बनाते। सामने पड़ा माडल चित्रकार की कल्पना में ढल कर जिस रूप में साकर होता है, वह चित्रकार के अपने परस्पैक्टिव, अपनी दृष्टिदिशा, अपनी अनुभूतियों की देन है। इसी तरह घटना लेखक के व्यक्तित्व में जज्ब होकर जिस कहानी का रूप लेकर निकलती है लेखक के लिए वही उस घटना का सत्य है। इस सत्य को अपने में ही सीमित रखना लेखक के वश की बात नहीं। जो अपने को भला लगता है, सत्य लगता है, दिल चाहता है कि और लोग भी उसे ही भला कहें, उसे ही सत्य मानें। शायद यही भावना उसे लिखने के लिए प्रेरित करती है। और जिसे लेखक सत्य समझता है, उस सत्य की ओर संकेत करना ही उसके कला कौशल का परिमाण है।'

भीष्म साहनी

श्री भीष्म साहनी का जन्म अगस्त सन् १९१५ में रावलपिंडी में हुआ था। वह श्री बलराज साहनी के छोटे भाई हैं। हिन्दी के नए कहानी लेखकों में उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विश्व के कहानी साहित्य का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है और उनकी कहानियाँ भाव तथा गठन दोनों दृष्टियों से निस्सन्देह श्रेष्ठ कोटि की होती हैं। 'भाग्य रेखा' और 'पहला पाठ' नाम से उनके दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अपने साहित्य सृजन के ध्येय के सम्बन्ध में उनका कथन है :

'अपने साहित्य के उद्देश्य के बारे में स्पष्टतया कुछ भी कहना कठिन है। मैं समझता हूं कि किसी साहित्यक कृति का जन्म केवल विचारों अथवा कल्पनाओं से नहीं होता, वह जीवन-दर्शन से होता है। उसी से कुछ लिखने की प्रेरणा भी मिलती है। और लिखते समय लेखक जीवन के ही किसी पहलू को आंकना चाहता है। इस तरह मैं सोचता हूं कि कला-कृति का मूलाधार तो यथार्थ जीवन होता है।'

कहानी के क्षेत्र में भीष्म साहनी से मुझे बड़ी एँ हैं।

सत्यप्रकाश संगर

श्री सत्यप्रकाश संगर का जन्म १९१७ में हुआ था सर्वप्रथम कहानी उन्होंने १९४७ में लिखी, जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। साहित्य सृजन के उदेश्य के बारे में उनका कथन है:

'किसी अदम्य इच्छा के अन्तर्गत मैं साहित्य रचना करता हूँ।'

पिछले १० वर्षों में व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा है, यह प्रसन्नता की बात है।

रचनाएँ :

कहानी संग्रह:—लम्बे दिन जलती रातें, नया मार्ग, कितना ऊँचा कितना नीचा, अवगुण्ठन, अफ्रीका का आदमी।

उपन्यास :—कली मुस्कराई, घर की शाम, चाँद रानी।

कृष्ण बलदेव वैद

श्री कृष्ण बलदेव वैद आजकल विलायत गए हुए हैं। इससे वह मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाए। उनका जन्म सम्भवतः १९१७ के आसपास हुआ था। अंग्रेजी साहित्य के वह अध्यापक हैं और उनकी रचनाओं पर विदेशी साहित्य का स्पष्ट प्रभाव हैं। उन्होंने कितनी ही फुटकल कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सफल प्रयत्न किया गया। 'उसका बचपन' नाम से उनका एक उपन्यास हिन्दी में

लगभग ४ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास निस्सन्देह श्रेष्ठ कोटि का है, और उसे पढ़ कर लेखक के सम्बन्ध में न सिर्फ ऊँची धारणा बनती है अपितु उससे यह आशा होती है कि भविष्य में हिन्दी साहित्य को वह और भी अधिक मूल्यवान रचनाएँ दे सकेंगे।

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल

श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल का जन्म १९१८ में हुआ था। १९३४ में उन्होंने अपनी पहली कहानी लिखी। पहले वह विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखती रहीं, पर १९४२ से उन्होंने लिखने का कार्य गम्भीरता से लिया। इस समय तक उनके ८ उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही में 'एकाकी न रमते' नाम से एक उपन्यास उन्होंने लिखा है। कुछ नाटक भी उन्होंने लिखे हैं। श्रीमती सब्बरबाल की कहानियां भी निस्सन्देह श्रेष्ठ कोटि की हैं, क्योंकि उनमें अच्छी लेखन शैली के साथ कोई उदेश्य भी रहता है।

उनके साहित्य सृजन का उद्देश्य क्या है? इसके उत्तर में उनका कथन है:

'साहित्य सृजन का उदेश्य क्या है मैं नहीं जानती। बस लिखने को मन चाहता है और मन चाहने के बाद भी बहुत दिनों तक अवकाश ही नहीं मिलता। फिर जब कथा भीतर-बाहर सभी तरफ से बहुत दबाव डालने लगती है, तब लिखे बिना रहा ही नहीं जाता, अतः लिखने लगती हूँ। कभी कभी तो जैसे सनक-सी सवार हो जाती है। पर लिख चुकने पर बड़ा आनन्द आता है। भार मुक्ति का-सा आनन्द आता है। सम्भवतः मैं साहित्य का सृजन नहीं करती, वरन् वह स्वयं मेरे द्वारा सृजित हो जाता है। पर वह प्रक्रिया मुझे अच्छी लगती है। चाहें तो उदेश्य 'स्वान्तः सुखाय' ही कह लें।'

रचनाएँ:-

कहानी संग्रह:—भूख

उपन्यास:—मूक प्रश्न, भोली भूल, संकल्प, त्रिवेणी, भटकती आत्मा, स्वतन्त्रता की ओर, मूक तपस्वी, पुनरुद्धार।

कुलभूषण

श्री कुलभूषण का जन्म सन् १९२० में हुआ था। वह हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार पं० सुदर्शन जी के सुपुत्र हैं। अपनी पहली कहानी उन्होंने १९३० में लिखी, जो दैनिक 'शक्ति' में प्रकाशित हुई थी। श्री कुलभूषण में अपने पिता के सब गुण आए हैं। स्पष्टतः कला के सम्बन्ध में उनकी धारणा अपने पिता जी से कुछ भिन्न है, पर जहां तक चरित्र-चित्रण और कहानी के गठन का सम्बन्ध है, वह अपने पिता जी से प्रभावित हुए हैं। नये कहानी लेखकों में निस्सन्देह कुलभूषण जी का स्थान महत्वपूर्ण है।

साहित्य सृजन के सम्बन्ध में उनका ध्येय इस प्रकार है :

'साहित्य सृजन का उद्देश्य संक्षेप में कह सकना एक कठिन काम है। जो सभी कलाओं का उद्देश्य है, वही मैं साहित्य का उद्देश्य भी मानता हूं। इस उद्देश्य के दो अंग हैं : (१) जीवन को बहुत ही बारीकी से आंकना उसकी यथार्थता को अपनी कला में उतार देना, और (२) कला को कला के लिए नहीं, कला से जीवन अधिक मीठा, अधिक भरपूर बनाने का माध्यम बनाना। यथार्थता के नाम पर जो नग्न वासना आज-कल साहित्य में घर करती जा रही है—निरुद्देश्य सहज रस लेने के लिए—उसका मैं घोर विरोधी हूँ। हाँ, जहाँ वासना का अंकन आवश्यक है, उससे बचना मैं किसी अच्छे कलाकार के लिए उचित नहीं समझता। इनके अलावा, कहानी के शिल्प के विषय में मैं बहुत सजग रहना चाहता हूँ। स्केच व कहानी के अन्तर को प्रत्येक लेखक को समझना चाहिए।'

रचनाएं :

कहानी संग्रह :—पगडण्डी और परछाइयाँ, सपनों का टुकड़ा।

उपन्यास :—सुलेमान का खजाना।

मोहन चोपड़ा

श्री मोहन चोपड़ा का जन्म सन् १९२२ में हुआ था। उन्होंने १९४९ से लिखना प्रारम्भ किया। 'नीड़ से आगे' उनका लघु उपन्यास इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास पढ़ कर मुझे सचमुच श्री मोहन चोपड़ा से काफी आशा हो गई है। इस उपन्यास में उन्होंने कुमारी तथा पतियों से पृथक रहने वाली अध्यापिकाओं का चित्रण

किया है। इस चित्रण में इन्हें निस्सन्देह असाधारण सफलता प्राप्त हुई है और अपने ढंग का यह एक विशिष्ट उपन्यास है। 'बाहें' नाम से उनका एक उपन्यास ३ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। वह उपन्यास भी मनोवैज्ञानिक था। 'शरारत' नामक उनका एक कहानी संग्रह आजकल प्रेस में हैं। इन दिनों वह एक बड़ा उपन्यास लिख रहे, जिसमें हरियाना प्रदेश पर भाखड़ा के सामाजिक, आर्थिक और मानसिक प्रभावों का चित्रण होगा।

उनके साहित्य सृजन का ध्येय है :

'यथार्थ चित्रण, पर यथार्थ का पारिवारिक रूप नहीं बल्कि सामाजिक पार्श्व का वह भाग, जो निरन्तर संघर्षरत है और विकासशील है। मेरी कोशिश यही रहती है कि जो कुछ भी लिखूं, उसे जीवन की भूमि के अधिक निकट ला सकूं।'

पुष्पा महाजन

श्रीमती पुष्पा महाजन का जन्म सन् १९२३ में हुआ था। १९५४ से उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया। 'संघर्ष और शान्ति' नाम से उनका एक कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुका है और भी बहुत-सी कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं, जो अभी पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हो पाईं। 'घूमते नक्षत्र' नामक उनका एक उपन्यास प्रेस में है। एक अन्य उपन्यास वह इन दिनों लिख रही हैं। श्रीमती पुष्पा महाजन की कहानियाँ भाव-प्रधान हैं। यदि अपनी कहानियों के कथा-तत्व पर वह कुछ अधिक ध्यान देंगी, तो उनकी रचनाओं का मूल्य और भी अधिक बढ़ जाएगा।

साहित्य सृजन के सम्बन्ध में उनका ध्येय है :

'उद्देश्य की दृष्टि से तो मैं आदर्श के ही अधिक निकट कही जाऊँगी। यद्यपि साहित्य-सामग्री का चयन यथार्थ की गहनता में से ही होता है, फिर भी जो जैसा है उसे वैसा ही ग्रहण करने का मन नहीं होता। सामाजिक विषमताओं, सांसारिक उलझनों को देख कर, उन्हें उसी रूप में चित्रित कर देने मात्र से ही मन को सन्तुष्टि नहीं होती। सो कभी-कभी ऐसी भावना होती है कि कुछ ऐसा दे सकूं, जो जन-कल्याण, समाज-निर्माण और मानवता के उत्थान में सहायक हो सके। इसी में कला की सार्थकता है। साहित्य की महत्ता अवगुणों पर गुणों को उत्कर्ष देने में है। साहित्यकार यथार्थ दर्शन अवश्य करे, किन्तु उसकी धूमिलता में आदर्श अपना रूप न छिपा ले। क्वार के थोथे मेघ-खण्डों का, निर्गन्ध किंशुक पुष्प का कुछ भी मूल्य नहीं होता।'

रजनी पनिकर

श्रीमती रजनी पनिकर का जन्म सितम्बर १९२४ में हुआ था। लिखने का शौक उन्हें बचपन ही से था, पर पत्र-पत्रिकाओं को लिए उन्होंने १९४८ से लिखना प्रारम्भ किया। श्रीमती रजनी पनिकर को मैं तब से जानता हूं, जब वह कालेज में शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। साहित्य के प्रति उनका आकर्षक उन्हीं दिनों से था। 'ठोकर' नामक उनका पहला उपन्यास १९४८ में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास पढ़ कर मुझे निराशा हुई थी, पर लगभग ६ वर्ष बाद १९५४ में जब 'पानी की दीवार' नामक उनका उपन्यास प्रकाशित हुआ, तो उसे पढ़ कर मैं एकाएक फड़क उठा। पानी की दीवार' एक अत्यन्त शक्तिशाली उपन्यास है, जिससे बहुत कोमल मनोविज्ञान के विषय को बड़ी सफलता से निभाया गया है। 'पानी की दीवार' की लेखिका के सम्बन्ध में मुझे यह विश्वास हो गया था कि उनका भविष्य निस्सन्देह अत्यन्त उज्ज्वल होगा। बाद में श्रीमती रजनी पनिकर ने जो उपन्यास लिखे हैं, उनसे मेरी वह धारणा पूरी तरह पुष्ट हुई है। अब तक श्रीमती पनिकर ने ६ उपन्यास लिखे हैं। इन सब उपन्यासों में एक भी बड़ा उपन्यास नहीं है। पर प्रथम को छोड़ कर शेष पाँचों उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। उनसे लेखक की सूक्ष्म दृष्टि और गहरी सूझ का परिचय मिलता है। नए युग की भारतीय लड़कियों का चित्रण करने में, उनकी समस्याओं का सही-सही खाका खींचने में, श्रीमती पनिकर को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। उनके उपन्यासों का कथानक यथेष्ठ पुष्ट है और पाठक उनके द्वारा रस प्राप्ति करता है। यह उनके उपन्यासों की शक्ति है। आजकल वह 'गुनहगार हूं' नाम से एक उपन्यास लिख रही है, जिसमें एक वय:प्राप्त ऐसी कुमारी की आत्मकथा है, जिस पर घर के सदस्यों के लालन-पोषण का भार है।

उनका सब से प्रिय माध्यम उपन्यास है।

साहित्य सृजन के ध्येय के सम्बन्ध में उनका कथन है :

'मैं किसी विशेष उद्देश्य या सिद्धान्त को लेकर नहीं चली। जो कुछ आत्मा को छू जाए, वही स्वत: व्यक्त हो जाता है। मेरा उद्देश्य समाज-सुधार या कोई अन्य बड़ा नारा नहीं है। मेरा क्षेत्र सीमित है। मैं नारी—वह भी शिक्षित, अर्द्ध-शिक्षित, शहरी नारी के मनोभावों, भाव-प्रतिक्रियाओं को अंकित करती हूं। इन्हीं को लिखते समय कभी कभी अनायास ही किसी ऐसे भ्रम का निरावरण हो जाता है, जो समाज के लोग

यों ही अपने मन में आज की नारी के प्रति पालते हैं। मेरा उद्देश्य यह कभी नहीं कि मैं वह सब लिखूं जिसे मैंने देखा नहीं, सुना नहीं। उपन्यास लिखते समय मुझे केवल इस बात का ख्याल रहता है कि मैं कोई ऐसा पात्र पेश न करूं जो जाना पहचाना न हो। कोई ऐसी घटना भी न चित्रित करूं, जो अस्वाभाविक लगे। आदर्श का ढोंग रचने का भी मेरा उद्देश्य नहीं। एक पात्र एक परिस्थिति में जीवन में जैसा व्यवहार करेगा, वैसा ही दिखलाने का प्रयत्न करती हूं। मेरे पात्र देवता नहीं, केवल मानवों जैसा व्यवहार करते हैं।'

रचनाएं :

कहानी संग्रह—सिगरेट के टुकड़े।

उपन्यास—ठोकर, पानी की दीवार, मोम के मोती, प्यासे बादल, काली लड़की, जाड़े की धूप।

मोहन राकेश

श्री मोहन राकेश का जन्म जनवरी १९२५ में हुआ था। लिखना उन्होंने सन् १९४५ से प्रारम्भ किया। यद्यपि उनका पहला कहानी संग्रह 'इंसान के खण्डहर' सन् १९५० में प्रकाशित हो गया था, तथापि मैंने उनकी पहली रचना 'आखिरी चट्टान तक' सन् १९५४ में पढ़ी। यह रचना पढ़कर मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ। नए लेखकों की श्रेष्ठ रचनाएं पढ़कर मुझे सदा बहुत अधिक प्रसन्नता होती है। पर ऐसा बहुत कम होता है कि किसी नए लेखक की रचना पढ़कर मैं फड़क उठूं। श्री मोहन राकेश की उक्त रचना पढ़कर मैं सचमुच फड़क उठा था।

पिछले ५-६ वर्षों में श्री मोहन राकेश की कला में असाधारण विकास हुआ है। यह आज निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि नई पीढ़ी के कहानी लेखकों में उनका स्थान सबसे आगे है। एक नाटककार के रूप में भी उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पर उनका सर्वश्रेष्ठ माध्यम, मेरी राय से, कहानी ही है। स्वयं उनका भी कहना है—मेरा अब तक का सबसे प्रिय माध्यम कहानी ही रहा है। हालांकि अब मेरी रुचि लम्बी कहानी और उपन्यास की ओर होती जा रही है।'

यह तो मैं नहीं कहूंगा कि श्री मोहन राकेश ने हिन्दी कहानी को कोई नया तत्व दिया है, पर गठन का दृष्टि से उनकी कहानियां निस्सन्देह उस उँचाई तक पहुँच गई है. जिस उंचाई तक हिन्दी के किसी भी सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक की कहानियाँ पहुँच पाई हैं और यह उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि है।

साहित्य सृजन के ध्येय के सम्बन्ध में उनका कथन है :

'मैं साहित्य का जीवन के साथ निश्चित सम्बन्ध स्वीकार करता हूं और जीवन के अनुभवों को ही एक कलात्मक परिधि में व्यक्त करना चाहता हूँ। मैं यह भी समझता हूँ कि व्यक्ति की रचना और उसके आचरण में सामंजस्य आवश्यक है—बिना इस सामंजस्य के कोरी कल्पना से, या शिल्पाधिकार से, लिखी गई रचनाएँ निष्प्राण ही होती है।'

रचनाएँ :

कहानी संग्रह:—इंसान के खंडहर, नए बादल, जानवर और जानवर,
उपन्यास:—आखिरी चट्टान तक।

वीरेंद्र मेंहदीरत्ता

श्री वीरन्द्र मेंहदीरत्ता का जन्म मई १९३० में रावलपिंडी में हुआ था। १९५० से में उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया। 'शिमले की क्रीम' और 'पुरानी मिट्टी नए ढांचे' नामक उनके दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कहानी ही उनका सबसे प्रिय माध्यम है।

साहित्य सृजन के ध्येय के सम्बन्ध में उनका कहना है :

'अपने चारों ओर कुछ खटकने वाली बातों को, जिन्हें सबने स्वीकार कर लिया है, इस प्रकार अभिव्यक्त करना कि सबको ही वे खटकने लगें। साहित्य सृजन का मेरा यही उद्देश्य है।'

इनके अतिरिक्त अन्य भी कुछ लेखक हैं जिन्होंने हिन्दी में कहानियाँ, उपन्यास

आदि लिखे हैं। इनमें सर्वश्री प्यारेलाल, सत्यपाल आनन्द, मोमेश चौधरी आदि उल्लेखनीय हैं। श्री प्यारेलाल का जन्म भी रावलपिंडी में हुआ था। अब तक वह ५ उपन्यास लिख चुके हैं। उनके अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक हैं। इसके अतिरिक्त १५ अन्य प्रकाशित पुस्तकों के भी वह लेखक हैं।

यह हर्ष का विषय है कि कुछ पंजाबी और उर्दू लेखक अब मूल्य रूप से हिन्दी में लिखने का प्रयास कर रहे हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कहानीकार श्री कृष्णचन्द्र तथा पंजाबी की सुप्रसिद्ध कवयित्री श्री मती अमृता प्रीतम ने मुझसे वायदा किया है कि वे कभी-कभी मूल हिन्दी में भी अपनी रचनाएं लिखेंगे। पंजाबी के सुप्रसिद्ध कहानी लेखक तथा नाटककार भी श्री कर्तारसिंह दुग्गल अपनी पंजाबी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद स्वयं कर रहे है। यह अनुवाद बहुत उतम कोटि का है। इनसे स्पष्ट होता है कि दुग्गल जी बहुत अच्छी हिन्दी भी लिख लेते हैं। इस समय तक उनके ३ उपन्यास और दो कहानी संग्रह हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं। यही बात उर्दू के कहानीकार श्री बलवन्त सिंह के सम्बन्ध में भी है, जिनका एक उपन्यास तथा दो कहानी संग्रह हिन्दी में छपे हैं। श्री बलवन्त सिंह जी को बहुत से लोग अब हिन्दी का ही लेखक समझने लगे हैं। ये सब आशा के चिन्ह हैं। मुझे विश्वास है कि इन सब प्रतिभाओं से हिन्दी कहानी तथा हिन्दी उपन्यास साहित्य और भी समृद्ध बनेगा।

उपसंहार

पंजाब में उत्पन्न कहानी लेखकों और उपन्यासकारों के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवरण देने के बाद इस भाषण का उपसंहार करते हुए मैं हिन्दी कहानी और हिन्दी उपन्यास की उपलब्धि के सम्बन्ध में कुछ बातें अवश्य करना चाहूंगा। इस सम्बन्ध में कहानी और उपन्यास को अलग करने की आवश्यकता नहीं है, इससे जो कुछ मैं कहने जा रहा हूं वह साहित्य के इन दोनों माध्यमों पर लगभग समान रूप से लागू होता है। क्योंकि, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, इन दोनों माध्यमों का विकास हिन्दी में लगभग एक ही साथ हुआ है, यद्यपि उनकी विकास गति में भेद रहा है।

हिन्दी कहानी और हिन्दी उपन्यास प्रारम्भ में आदर्श प्रधान थे। यह भी शायद परिस्थतियों का प्रभाव था। प्रथम महायुद्ध के साथ भारत में नई चेतना जागी। भारतीय समाज स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक आदि महान् सुधारकों से प्रभावित था। प्रथम महायुद्ध के आसपास महात्मा गान्धी ने इस नई चेतना को मूर्त्त रूप देने का प्रयत्न किया। देश भर में सामाजिक और चारित्रिक क्रान्ति हो गई। इस बात का प्रभाव भारतीय साहित्य पर पड़ा। सौभाग्य से हिन्दी की परम्परा इस परिवर्तन के अत्यन्त अनुकूल थी, क्योंकि स्वामी दयानन्द ने स्वयं गुजराती होते हुए भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया था और अपने क्रान्तिकारी विचार हिन्दी में ही व्यक्त किए थे और उसके बाद बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द आदि लेखकों ने उसकी कृतियों में समाज सुधार पर विशेष रूप से बल दिया था। हिन्दी की यह परम्परा साहित्य के उक्त दोनों नए माध्यमों में और भी स्पष्ट रूप से प्रस्फुटित हुई। उस युग के उपन्यास और कहानियां उक्त चेतना से आप्लावित थे। यों तो भारत की सब भाषाओं के सम्बन्ध में कम-अधिक यही बात कही जा सकती है, फिर भी इस दृष्टि से हिन्दी का क्षेत्र विशेष रूप से अनुकूल सिद्ध हुआ। उत्तर भारत में नई चेतना का प्रसार करने में इस युग के हिन्दी साहित्य का स्थान भी उपेक्षणीय नहीं है। जिस देश

की ६० प्रतिशत जनता निरक्षर थी, उस देश के सम्बन्ध में यह तो नहीं कहा जा सकता कि नव जागरण के कार्य में साहित्य ही एकमात्र उपादान सिद्ध हुआ तथापि इस बात में सन्देह नहीं है कि राष्ट्रीयता और समाज सुधार के अनुकूल वातावरण बनाने में इस युग के साहित्य की सहायता महत्वपूर्ण है, विशेषतः इस युग के कहानी और उपन्यास साहित्य की।

हिन्दी कहानी और हिन्दी उपन्यास ने प्रारम्भ में बँगला से प्रेरणा प्राप्त की थी, इससे उस पर भी भावुकता की गहरी छाप थी। शुरु शुरु में इस युग में लिखे गए हिन्दी उपन्यास और हिन्दी कहानियाँ आदर्श प्रधान होने के साथ भावुकतापूर्ण भी थे। मुंशी प्रेमचन्द ने वह प्रभाव बहुत शीघ्र मिटा दिया और वह हिन्दी कहानी और हिन्दी उपन्यास को वास्तविकता के स्तर पर ले आए। यद्यपि आदर्श प्रधान वह उसी तरह रहे।

इस सदी की चौथी पाँचवी दशाब्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास तथा कहानियाँ भी हिन्दी में लिखी गईं। ऐसे उपन्यास और ऐसी कहानियाँ, जिनमें व्यक्ति महत्वपूर्ण रहता है और उसके अन्तर्द्वन्द्वों का या निजी समस्याओं का चित्रण किया जाता है। शेखर, त्यागपत्र, सुखदा आदि इसी श्रेणी के उपन्यास थे। मेरा ख्याल है कि यह भी बँगला का, विशेष रूप से रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव था। एक तरह से इस युग के हिन्दी उपन्यास और हिन्दी कहानियाँ अन्तर्मुखी कही जा सकती हैं।

दूसरे महायुद्ध के आसपास इस स्थिति में परिवर्तन आया। जिस कुण्ठा का मैंने ऊपर जिक्र किया है, वह कुण्ठा जब समाप्त हुई तब हमारा देश स्वतन्त्र हो चुका था। इस समय तक परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गई थीं। स्वाधीनता के बाद कितनी ही एकदम नई समस्याएँ हमारे सामने आ खड़ी हुईं। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व लेखकों का ख्याल था कि भारत के स्वतन्त्र होते ही उसकी सब समस्याएँ आप से आप हल हो जाएँगी, पर व्यवहार में यह पाया गया कि स्वाधीनता के बाद हमें सिर्फ इस बात का अवसर मिला है कि हम उन समस्याओं से स्वयं सुलझें, अपनी शक्ति से परिस्थितियों का सामना करें। यह एक नई अनुभूति थी। ऐसी अनुभूति, जिसमें देश के नागरिक अपने अधिकारों से परिचित हो गए हैं और वह अनुभव करते हैं कि उनके आसपास परिस्थितियाँ पूरी तरह सन्तोषजनक नहीं हैं। इन परिस्थितियों में वे परिवर्तन तो करना चाहते हैं, पर अभी उन्हें समझ नहीं आ रहा कि किस तरह और क्या परिवर्तन